# श्री रामकृष्ण जी
## के
# कुछ उपदेश



श्री रामकृष्ण मिशन आश्रम,
कानपुर

# श्री रामकृष्ण जी

के

## कुछ उपदेश

श्री रामकृष्ण मिशन आश्रम,

कानपुर

प्रथम बार १००० ] १६३६. [ मू० ।)

प्रकाशक :—
स्वामी नित्यानन्द,
श्री रामकृष्ण मिशन आश्रम,
रामकृष्ण नगर,
कानपुर

मुद्रक
भोलानाथ चौधरी
महेन्द्र प्रेस, लाटूश रोड लखनऊ

# निवेदन

परमहन्स श्री रामकृष्ण देव के आविर्भाव से भारतवर्ष तथा समस्त सन्सार में एक नये युग का प्रारम्भ होता है। सर्व-धर्म-समन्वय के मूर्तविग्रह श्री रामकृष्ण के जीवन में प्रेम, पवित्रता तथा सत्य की जो अलौकिक छटा है और ज्ञान, कर्म तथा भक्ति का जो अपूर्व समावेश है, वह वर्तमान यह-सर्वस्व मानव समाज के चित्त में शान्ति तथा आनन्द की एक नवीन प्रेरणा देता है। उन्होंने अपने जीवन में सब धर्मों का साधन किया और यह प्रत्यक्ष किया कि सभी धर्म उसी एक परमात्मा की ओर ले जाते हैं। सब धर्मों के इस एकत्व के सन्देश का प्रचार उनके यशस्वी शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने सन्सार के अनेक भागों में किया। और आज पूर्व तथा पश्चिम दोनों ही श्री रामकृष्ण के चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

उनके दिव्य साधन-मय जीवन की आलोचना से और उनके सीधे सादे मीठे उपदेशों के मनन से मानव के तृषित हृदय को शान्ति मिलती है। प्रेम के अवतार श्री रामकृष्ण आज विश्व-वान्दित हैं और उनकी तथा उनके प्रिय शिष्य जगत-विख्यात स्वामी विवेकानन्द जी की वाणियां सन्सार की अनेक भाषाओं में अनुवादित हो गई हैं और हो रहीं हैं। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है परन्तु यह खेद की बात है कि हिन्दी में इन ग्रन्थों का यथेष्ट प्रचार नहीं है। इसी अभाव को दूर करने के लिये श्री रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर ने श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द सम्बन्धी पुस्तकों का हिन्दी में प्रचार करने का प्रयास किया है। यदि भक्तजनों को इस ग्रन्थ से शान्ति मिले और जन साधारण का कल्याण हो तो हम अपना श्रम सार्थक समझेंगे।

रामकृष्ण नगर — स्वामी नित्यानन्द

कानपुर

ॐ

# संक्षिप्त जीवनी

अनादिकाल से हमारी इस पुण्य भूमि भारत वसुन्धरा में अनेक आध्यात्मिक-ज्ञान-सम्पन्न श्रेष्ठ महापुरुष आविर्भूत होते रहे हैं। प्राचीन वैदिक साहित्य में शतशः ऋषि एवं राजर्षियों के नाम उपलब्ध हैं। परवर्ती काल में लोक-कल्याण के निमित्त श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध, आदि अनेक अवतार हुए हैं। इसी प्रकार शंकर, रामानुज, बल्लभ, मध्व, चैतन्य आदि धर्माचार्य्यों ने समय २ पर धर्म की स्थापना की। रामानन्द, सूरदास, तुलसी, कबीर, नानक आदि अनेक महात्माओं ने सर्व-साधारण में भगवत्-प्रेम का प्रचार किया।

श्रीरामकृष्ण देव का आविर्भाव इन सब के पीछे हुआ। इनके जीवन में हमें पूर्ववर्त्ती आचार्य्य

महात्माओं के आध्यात्मिक अनुभव और साधन-प्रणाली का एक अपूर्व समावेश दृष्टिगोचर होता है। सनातन धर्म के विभिन्न भावों, मतमतान्तरों तथा अन्यान्य धर्मों के अनुसार साधना करके पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर इन्होंने यह प्रत्यक्ष सिद्ध किया कि सभी धर्मों से भगवान शाक्षात्कार हो सकता है। इस लिये यह कहना युक्ति-युक्त है कि ये सर्वधर्म समन्वय का प्रकट रूप थे।

इनके पिता अति तेजस्वी, निष्ठावान, परम् भक्त श्री क्षुदीराम चट्टोपाध्याय हुगली प्रान्तस्थ कामारपुकुर गाँव में निवास करते थे। क्षुदीराम जी की धर्मपत्नी श्री चन्द्रमणि देवी भी सरलता और दया की प्रत्यक्ष मूर्ति थीं।

क्षुदीराम जी ६० वर्ष की आयु में एक वार पितरों को पिण्ड देने के लिये गयाधाम में गये थे। वहाँ श्री भगवान गदाधर विष्णु जी ने स्वप्न में ज्योतिर्मय रूप में प्रकट होकर इनसे कहा था कि "मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ और तुम्हारे यहां

पुत्ररूप में अवतार लूँगा।" इधर चन्द्रमणि देवी कामारपुकुर में अपने घर के सामने वाले शिव-मन्दिर के निकट खड़ी हुई थीं, कि इन्होंने देखा कि शिवमूर्ति से एक दिव्य ज्योतिप्रवाह आकर उनमें प्रविष्ट हो गया और उसने उन्हें दिव्य-भाव से अभिभूत कर दिया। पतिदेव के लौटने पर उन्होंने इस अलौकिक घटना की बात कही तो क्षुदीराम जी ने भी गया मन्दिर में होने वाली दिव्य घटना उनसे कही और उन्हें आश्वासन दिया कि हमारे घर में दिव्य बालक का जन्म होगा।

तदनन्तर १७ फरवरी सन १८३६ ई० को बुध के दिन हमारे चरित्रनायक ने जन्म ग्रहण किया। गया की घटना के अनुसार क्षुदीराम जी ने बालक का नाम गदाधर रक्खा। ये पाठशाला में सामान्य लिखना-पढ़ना सीखते हुए घर पर कुल-देवता श्री रघुबीर जी की सेवा करने लगे। ये अत्यन्त मधुर स्वर से गाना गा सकते थे और जिस कथा या यात्रा को एक वार सुन लेते उसके सब गान कंठस्थ कर लेते। बाल्य अवस्था में भी वे आनन्द

में मग्न रहते थे। एवं मुहल्ले के बालक, वृद्ध तथा स्त्रियाँ सभी उनसे प्रसन्न रहते थे।

उनके घर के पास गांव के जमींदार के मकान में एक धर्मशाला थी, जहाँ साधु-महात्मा आया जाया करते थे। गदाधर वहाँ पर साधुओं के संग रह कर उनकी सेवा करते और कथा वाचक जब पुराण पाठ किया करते तब एकाग्र चित्त होकर सुना करते थे। उनकी धारणा शक्ति ऐसी तीव्र थी कि जो कुछ एक बार सुनते वह उनके मन में अंकित हो जाता था।

क्षुदीराम जी की मृत्यु के बाद गदाधर अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ कलकत्ते गये। उस समय इनकी अवस्था १६ वर्ष के लगभग थी। कलकत्ते में इनके भाई की एक संस्कृत पाठशाला थी। इनके भाई उसमें इन्हें पढ़ाना चाहते थे। परन्तु इन्होंने उत्तर दिया कि "मैं ख़ाली रोटी कमाने वाली विद्या पढ़ कर क्या करूँगा। मैं वह विद्या चाहता हूँ जो मेरे अज्ञान को दूर कर मुझे चिर आनन्द दे सके"।

रानी रासमणि ने कलकत्ते से ढाई कोस पर दक्षिणेश्वर में काली मन्दिर की स्थापना की थी। ३१ मई सन १८५५ ई० को गदाधर के ज्येष्ठ भ्राता पं० रामकुमार जी मन्दिर के प्रथम पुजारी नियुक्त हुए थे। रानी रासमणि के जामाता मथुर बाबू पर गदाधर के दर्शन का बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने बड़ी प्रार्थना से इन्हें देवी जी की पूजा का भार लेने के लिये राज़ी किया। इस समय इनकी अवस्था २० वर्ष की थी। ये सदा तन्मय हो कर पूजा किया करते थे और थोड़े ही दिनों में इनके मन की अवस्था कुछ और ही हो गई।

जगन्माता के दर्शन के लिये उनके हृदय में इतनी तीव्र व्याकुलता हो गई थी कि सारे दिन जगन्माता के चिन्तन में मग्न रहते थे और सूर्यास्त होने पर कहते थे कि 'हे माता! और एक दिन बीत गया किन्तु तुम्हारा दर्शन नहीं मिला।' ऐसा कह कर रोते रोते पृथ्वी पर लोटने लगते और मिट्टी में माथा रगड़ने लगते। भगवद्विरह के अन्तस्ताप से उनके शरीर के ऊपर भी असह्य

संताप हुआ करता था। आहार और निद्रा नाम-मात्र को रह गई थी। एक दिन परम व्याकुल होकर माता से बोले—"यदि दर्शन न दोगी, तो आत्महत्या कर लूँगा। तदनन्तर उन्हें ज्योतिर्मयी जगज्जननी का दर्शन हुआ। दर्शनानन्तर वे दिव्यो-न्माद में सदैव मग्न रहने लगे और पूजा करने में असमर्थ हो गए। वे कभी कभी वाह्यज्ञान-शून्य भी रहने लगे। इसी समय इनके कुटुम्बियों ने यह समझ कर कि शायद विवाह से इनकी अवस्था बदल जाय श्री शारदामणि देवी के साथ उनका विवाह कर दिया। विवाह के समय श्री रामकृष्ण जी की अवस्था २२-२३ वर्ष को थी और श्री शारदामणि की अवस्था ६ वर्ष की थी।

विवाह के पश्चात् परमहंस दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में लौट आये और उनकी अवस्था बिल्कुल नहीं बदली। काली देवी की पूजा करते २ ही आप अद्भुत ईश्वर-रूप का दर्शन करने लगते। आरती करने पर शेष ही नहीं होती। पूजा करने बैठते पर

वह समाप्त ही नहीं होती। कभी २ तो वे ऐसे लीन हो जाते कि अपने ऊपर ही फूल चढ़ा लेते। वे फिर और पूजा नहीं कर सके और प्रेमोन्मत्त होकर इधर उधर विचरने लगे। मथुर बाबू उनको महापुरुष समझ कर उनकी सेवा करने लगे और दूसरे ब्राह्मण द्वारा काली माता की पूजा का प्रबन्ध करा दिया। श्री रामकृष्ण के भाँजे श्रीयुत हृदय मुखोपाध्याय को उन्होंने श्रीरामकृष्ण की सेवा का भार दे दिया।

परमहंस देव ने फिर पूजा भी नहीं की और सांसारिक व्यवहार भी नहीं किये। विवाह नाम-मात्र के लिये ही हुआ। उन्होंने अपनी पत्नी से कभी शरीर-सम्बन्ध नहीं किया। प्रत्युत उसे जगन्माता का रूप समझ कर उनकी पूजा की थी। वे रात दिन 'मा! मा!' किया करते थे और जगन्माता के साथ बात करते थे। कभी जड़वत् काष्ठ की पुतली की तरह और कभी बालक की भाँति। कामिनी—काञ्चनासक्त विषयी पुरुषों को

देख कर आप छिप जाते थे। ईश्वर की भक्ति तथा चर्चा के अतिरिक्त और कुछ उनको अच्छा नहीं लगता था।

दक्षिणेश्वर का काली मन्दिर एकान्त तथा पवित्र स्थान है। वहां सदाव्रत दिया जाता है। गंगासागर और पुरी की यात्रा करने वाले बहुत से मत मतान्तर के सज्जन, पण्डित, अनुभवी महात्मा आया करते थे और परमहंस देव के साथ मिलते थे। तन्त्रशास्त्र में सुपंडिता एक सिद्धा भैरवी ब्राह्मणी सन १८६१ के लगभग आई और उसने उन्हें योग्य साधक समझकर श्रीरामकृष्ण से ६४ प्रकार के तन्त्रोक्त एवं और और यौगिक साधन कराये। श्रीरामकृष्ण ने सब में पूर्ण सिद्धि प्राप्त की। ब्राह्मणी ने इन्हें श्रीनित्यानन्द वेश में श्रीचैतन्य समझ कर इनको श्रीमद्भागवत श्रीचैतन्य-चरितामृत आदि वैष्णव ग्रन्थ भी सुनाये। इस ब्राह्मणी ने श्रीरामकृष्ण जी को सब से पहिले अवतार घोषित किया था और उसने मथुर बाबू द्वारा वर्द्धमान राज्य के सभा-पंडित पद्मलोचन आदि प्रसिद्ध पण्डितों को एकत्र किया और उनके

सामने परमहंस का शारीरिक और मानसिक लक्षण प्रदर्शन कर शास्त्रों के प्रमाण से उनका अवतार होना प्रतिपादन किया।

तांत्रिक साधना में सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात श्री रामकृष्ण ने वैष्णव साधनाओं से भी उन्हीं के भावों के अनुसार भगवद्दर्शन लाभ किया। दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भावों की पृथक २ रीति के अनुसार तन्मय होकर सिद्धि प्राप्त की। प्रत्येक साधना के अन्त में साधनानुयायी ईश्वरीय रूप उनके सामने प्रकट होता था और उनमें लीन हो जाता था। वे वात्सल्यभाव में श्री रामचन्द्र जी की बालमूर्ति का निरन्तर दर्शन करते थे और बाल रामचन्द्र इनके साथ उसी प्रकार लीला विलास करते थे जैसे बच्चा माता के साथ।

वे जब कोई साधना आरम्भ करते थे तो उसी भाव में मग्न रहते हुए ही उनकी समस्त जीवन क्रिया होती थी। दास्य भाव से साधना करते समय महावीर हनुमान जी की तरह फल

मूल खाते थे और वृक्ष-शाखा पर बैठे रहते थे। मधुर भाव की साधना में श्रीमती राधारानी के सखी भाव में आविष्ट होकर उसी तरह वेष-भूषा का व्यवहार रखते थे। श्री कृष्ण-विरह के अन्तस्ताप में उनको इतना सन्ताप होता था कि सारे दिन सिर पर भीगा अंगोछा रख कर आकण्ठ गंगाजल में निमग्न रहते थे और शाम को मथुर बाबू की कोठी में संगमरमर के फ़र्श को धुलवा कर शान्ति पाने के लिये वहीं लेट जाते। उन्होंने देखा कि कोई भी साधना यदि दृढ़ निष्ठा से कीजाय तो उसी से भगवत्-प्राप्ति होती है। परमहंस जब कोई साधना आरम्भ करते थे तब उसी भाव के गुरु भी उनके पास आ जाया करते थे।

एक दिन सन १८६५ में वेदान्तिक संन्यासी ब्रह्मनिष्ठ तोतापुरी यदृच्छा से काली मन्दिर में पधारे। परमहंस को देख कर और वेदान्त साधन का अधिकारी समझ कर तोतापुरी ने इन्हें संन्यास दीक्षा दी। दीक्षामात्र से परमहंस को निर्विकल्प

समाधि लग गई और वे तीन दिन तक उसी समाधि में मग्न रहे। तीन दिन के बाद तोतापुरी ने अपने शिष्य को समाधि से व्युत्थित किया और कहा कि "जो दशा मुझे ४० वर्षों के साधन से प्राप्त हुई वही इन्हें तीन दिन के परिश्रम से मिल गई।" तोतापुरी तीन दिन से अधिक कहीं पर नहीं ठहरते थे, परन्तु परमहंस देव के प्रभाव से उनका यह नियम टूट गया। ११ मास परहंस देव के संग निवास करके वे चले गये।

तब परमहंस देव के मन में निरन्तर निर्विकल्प समाधि में रहने की इच्छा हुई। वे ६ महीने इसी अवस्था में रहे तब जगन्माता ने कहा था "तू और मैं एक, तू भक्ति के लिये रह। जीवों के मङ्गल के लिये अनेक शुद्ध कामनाशून्य भक्त आयेंगे।" तब श्री रामकृष्ण रात-दिन समाधिस्थ और भाव-मग्न रहा करते थे।

सन् १८६८ में मथुर बाबू परमहंस देव को साथ लेकर तीर्थयात्रा के लिये बाहर गये। वैद्यनाथ भगवान् के दर्शन करके काशीधाम और प्रयाग

भी गये थे। द्वितीयबार वे ७-८ वर्ष बाद गये थे। इस यात्रा में काशीधाम, प्रयाग और वृन्दावन के दर्शन किये। काशी में मणिकर्णिका पर समाधिस्थ होकर विश्वनाथ के गम्भीर चिन्मय रूप के दर्शन किये थे और उन्हें मुमुक्षुओं के कान में तारक ब्रह्म का नाम सुनाते देखा। वहीं मौन व्रतधारी तैलंग स्वामी से मिले। मथुरा में ध्रुव घाट पर श्री रामकृष्ण ने अपनी आंखों से वसुदेव की गोदी में श्री कृष्ण के दर्शन किये थे। संध्या समय श्रीकृष्ण यमुना पार से गौवों को गोशाला की ओर लौटाये ला रहे हैं इत्यादि लीलाभाव के भी अपनी आंखों से दर्शन किये थे। निधुवन में राधा-प्रेम में मग्न सिद्ध वैष्णवी गंगामाता के साथ मिले थे। गंगामाता श्री रामकृष्ण में श्रीमती राधारानी का महाभाव देख कर उनको दुलारी कहतीं थीं और उनको अपने पास रखना चाहतीं थीं।

परमहंस श्री रामकृष्ण ने वैष्णव, शक्ति, शैव इत्यादि भावों की साधना समाप्त करके अल्लाह मन्त्र का साधन करके सिद्धि का लाभ किया और

ईसा मसीह का भी चिन्तन करके दर्शन किया था। इस प्रकार परमहंस देव ने सर्व-धर्म-समन्वय प्रतिपादन किया। ये कहा करते थे कि भगवान् के अनेक नाम और अनन्त रूप हैं। चाहे जिस नाम व रूप का सरल हृदय में स्मरण करो, उसी के द्वारा परमेश्वर का दर्शन हो सकता है। उनके उपदेशों में कामिनी-काञ्चन त्याग का उपदेश प्रधान है। स्वयं भी उनका जीवन इस उपदेश का ज्वलन्त दृष्टान्त था। सभी स्त्रियों को, वेश्या तक को, वे जगन्माता का रूप समझते थे और काञ्चन से इतना उत्कट वैराग्य था कि निद्रावस्था में भी यदि कोई इनके शरीर से रूपये पैसे का स्पर्श कराता तो उनका वह अंग ऐंठने लगता था।

सन १८७५ ई० में ब्राह्म समाज के तृतीय प्रधान नेता श्रीयुत केशवचन्द्र सेन जब बेलघर के बाग़ में भक्तों के साथ ध्यान चिन्ता किया करते थे तब परमहंस देव उनसे मिलने गये थे।

केशव की भगवद्भक्ति देख कर परमहंस बहुत प्रसन्न हुए थे और केशव के मन में भी उन पर

गम्भीर प्रेम और भक्ति का संचार हुआ था। केशव कभी भक्तों के साथ और कभी अकेले श्री रामकृष्ण के पास जाया करते थे। श्री रामकृष्ण भी केशव सेन के ब्राह्म-मन्दिर को और साधारण समाज को उपासना काल में देखने जाते थे। ये केशव के घर में और अन्यान्य ब्राह्म भक्तों के उपासना उत्सव में जाया करते थे। इस समय से केशवचन्द्र परमहंस की महिमा समाचार पत्रों-पत्रिकाओं में लिखने लगे। तब से देश विदेश में इनके नाम को लोग जानने लगे और उनके दर्शन करने के लिये एवं उनसे उपदेश लेने के लिये जनता आने लगी। अनेकों प्रसिद्ध विद्वान पण्डित तथा अन्यान्य विख्यात पुरुषों ने इनके दर्शन किये थे।

इस दशा में परमहंस देव की उन्माद अवस्था प्रायः चली गई थी और वे शान्त सदानन्द बालक की अवस्था में थे। कभी समाधि में लीन रहते, कभी भावराज्य में विचरण किया करते और कभी पाँच वर्ष के बालक के समान प्रतीत होते थे। व्युत्थान दशा में समागत भक्तों के साथ भगवत् चर्चा करते उपदेश

देते तथा भावोन्मत्त होकर कीर्तन, भजन और नृत्य किया करते थे। वे सब को नारायण दृष्टि से देखते और उसी प्रकार व्यवहार करते थे। उन्होंने स्वयं उपदेश दिया कि "जीव पर दया क्या? शिव समझकर उसकी सेवा करनी चाहिये एवं सभी के साथ नारायण दृष्टि से व्यवहार करना चाहिये"।

सन् १८७९-८० ई० में परमहंस के अनेक अन्तरङ्ग भक्त इनके पास आने जाने लगे। स्वामी विवेकानन्द (नरेन्द्रनाथ) पहिली बार सन १८८१ ई० में एक मित्र के साथ इनके पास गये और इन्होंने पूछा "महाशय, क्या आप ने परमेश्वर को देखा है?" और श्री रामकृष्ण ने दृढ़ता से कहा 'हाँ देखा है।" इस आशातीत उत्तर को सुन कर नरेन्द्र ने पूछा कि "क्या आप मुझे भी ईश्वर का दर्शन करा सकते हैं?" श्री रामकृष्ण ने कहा "हाँ, करा सकता हूँ"। अगली बार जब नरेन्द्र परमहंस देव के पास पहुंचे तो उन्होंने नरेन्द्र का हृदय स्पर्श करके उसकी निर्विकल्प समाधि लगादी।

परवर्त्ती काल में स्वामी विवेकानन्द जी ने

श्री रामकृष्ण जी की धर्म-समन्वय वाणी तथा सनातन वेदान्त धर्म का सार्वभौमिक स्वरूप अमेरिका, यूरोप और भारत वर्ष में प्रचार करके सनातन धर्म और भारत भूमि के प्रति भारतवासी तथा विदेशियों की श्रद्धा आकर्षित की है। सनातन धर्म का अनुशीलन और प्रचार तथा जाति वर्ण का भेद न मान कर नारायण भाव से सब मनुष्यों की हर तरह सेवा के लिये श्री रामकृष्ण मठ और श्री रामकृष्ण मिशन नामक संस्थायें स्थापित कीं।

उनके गृहस्थ शिष्यों में रामचन्द्र दत्त, बलराम वसु, गिरीशचन्द्र घोष, दुर्गा चरण नाग, महेन्द्रनाथ गुप्त, पूर्ण चन्द्र घोष इत्यादि अनेक बहुत ऊँचे दर्जे के सच्चे भक्त हुए हैं। अनेक स्त्रियाँ परमहंस श्रीरामकृष्ण की भक्ता थीं। संन्यासियों में विवेकानन्द, ब्रह्मानन्द, योगानन्द, निरञ्जनानन्द, प्रेमानन्द, रामकृष्णानन्द, तुरीयानन्द, अद्भुतानन्द, शारदानन्द, शिवानन्द आदि आचार्य्य कोटि के महात्मा हुए हैं।

सन् १८८६ में परमहंस की महा समाधि हुई।

अपने जीवन के अंतिम पाँच छः वर्षों में उनके पास धर्मोपदेश लेने के लिये विभिन्न सम्प्रदायों के उच्च नीच, धनी, निर्धन, स्त्री, पुरुष, युवा वृद्ध दिन-रात आया करते थे। परमहंस अविराम अविश्रान्त उपदेश देते रहते थे। उनमें इतनी आध्यात्मिक शक्ति थी कि वे किसी को स्पर्श द्वारा, किसी को दृष्टि द्वारा, किसी को उपदेश द्वारा, किसी को केवल इच्छा ही से प्राकृत संस्कारों को हटाकर ईश्वर-ज्ञान दिया करते थे। उन्होंने शास्त्रादि नहीं पढ़ा था। परन्तु अपने अनुभव से जो कुछ उपदेश देते थे वे शास्त्र के साथ मिलते थे। इसलिये उनका जीवन शास्त्र का भी प्रमाण-स्वरूप है। उनकी अलौकिक शक्ति, अपूर्व पवित्रता, महत् ज्ञान, अमानुषिक त्याग और असीम प्रेम को देखकर भक्तों की धारणा होगई थी कि वे अवतार हैं। उन्होंने भी अंतरङ्ग भक्तों से कहा था "जो राम, जो कृष्ण, वही अब रामकृष्ण।"



# आत्म-ज्ञान

१—मनुष्य अपने आप को पहचानने से भगवान को पहचान सकता है। 'मैं कौन हूँ ?' भली भाँति विचार करने पर मालूम पड़ता है कि "मैं" के नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। हाथ, पैर, खून, माँस इत्यादि—इनमें से 'मैं' कौन है ? जिस प्रकार प्याज़ का छिलका अलग करते करते छिलका ही निकलता जाता है ; कुछ बाक़ी बचता ही नहीं, उसी तरह विचार करने पर "अपनत्व" के नाम से कुछ बचता नहीं। अन्त में जो कुछ रहता है, वही आत्मा या चैतन्य है। अहंभाव दूर हो जाने पर भगवान् के दर्शन होते हैं।

२—'मैं' दो तरह का होता है। एक है पक्का 'मैं' और दूसरा कच्चा 'मैं'। मेरा मकान, मेरा घर, मेरा लड़का—यह सब कच्चा 'मैं' है। और

पक्का "मैं" है—मैं उनका दास, मैं उनकी सन्तान और मैं वही नित्य मुक्त-ज्ञान स्वरूप हूँ।

३—एक आदमी ने कहा—मुझको ऐसा उपदेश, दीजिये कि एक ही बात से मुझ में ज्ञान आजाय। उत्तर मिला 'ब्रह्म ही सत्य है' और जगत् मिथ्या है—इस बात को धारण करो।

४—शरीर के रहते हुये 'मेरा' अथवा 'मैं-पन' बिल्कुल नहीं मिट सकता है। कुछ न कुछ अवश्य रह जाता है; जैसे नारियल के पेड़ की शाखायें अलग हो जाने पर भी निशान तो बने ही रहते हैं। परन्तु यह नाम मात्र का "अपनत्व" मुक्त पुरुष को बाँध नहीं सकता है।

५—दिगम्बर तोतापुरी स्वामी से परमहंस जी ने पूछा—'अवस्था पाकर रोज़ रोज़ आपको ध्यान करने की क्या आवश्यकता है?' तोतापुरी जी ने जवाब दिया—'लोटे को यदि रोज़ माँजा न जाय तो मैला पड़ जाता है: नित्य ध्यान न करने से चित्त में अशुद्धि आजाती है'। परमहंस जी ने कहा—'अगर सोने का लोटा हो तो काला न होगा'।

अर्थात सच्चिदानंद लाभ होने पर साधना की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

६—'मैं' का बोध रहने से, 'तुम' का भी बोध रहेगा। जैसे जिसको उजाले का ज्ञान है, उसको अंधेरे का ज्ञान भी अवश्य रहेगा। जिसको अच्छे का ज्ञान है, उसको बुरे का भी ज्ञान है। जिसको पुण्य का ज्ञान है, उसको पाप का भी ज्ञान जरूर होगा।

७—जैसे जूते पहन कर निशङ्क काँटों के ऊपर से चला जा सकता है, उसी तरह "तत्वज्ञान" का आवरण पहन कर मन इस काँटेदार संसार में विचरण कर सकता है।

८—एक साधु हमेशा ज्ञानोन्माद अवस्था में रहते थे; किसी से बोलते न थे; और लोग भी उन्हें पागल समझते थे। एक दिन शहर से भिक्षा लाकर एक कुत्ते के ऊपर बैठ कर वही भिक्षान्न खाने लगे और कुत्ते को भी खिलाने लगे। यह देख कर बहुत से लोग वहाँ इकट्ठा हो गये और कुछ लोग तो उनको

पागल कह कर हँसी उड़ाने लगे। यह देख कर साधु ने लोगों से पूछा— 'तुम लोग क्यों हँसते हो ?'

विष्णु परिस्थितो विष्णुः ; विष्णुः खादति विष्णवे ।
कथं हससि रे विष्णो ; सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥

६—जब तक वहाँ-वहाँ (अर्थात् दूर या बाहर) है तब तक अज्ञान है, और जब यहाँ-यहाँ (अन्तर की ओर नज़र) है तभी ज्ञान है। जिसके लिये 'यहाँ' (अर्थात् अन्तर भाव) है, उसके लिये 'वहाँ' भी है (अर्थात् भगवत् चरणों में स्थान है)।

# ईश्वर

१—भगवान् सबके भीतर किस प्रकार विराजते हैं? जैसे चिक की आड़ से बड़े घराने की औरतें; वे सबको देखती हैं पर उनको कोई देख नहीं पाता। भगवान भी ऐसे ही सब में मौजूद हैं।

२—प्रदीप या दिये का काम है प्रकाश देना; कोई तो उसकी सहायता से रसोई बनाता है; कोई जाली कार्रवाई करता है; और कोई रामायण या अन्य सद्ग्रंथ पढ़ता है। यह सब क्या प्रकाश के गुण या दोष कहे जा सकते हैं। अर्थात् कोई तो भगवान् के नाम लेकर मुक्ति के लिये कोशिश

करता है ; और कोई वही नाम लेकर चोरी करता है अथवा पाखंड-रचता है—यह सब क्या भगवान के दोष कहे जा सकते हैं।

३—जिसकी जैसी भावना उसकी वैसी प्राप्ति ; भगवान कल्प वृक्ष के समान हैं। उनसे जो कुछ प्रार्थना की जाती है वही प्राप्त होता है। गरीब का लड़का हाई कोर्ट का जज बन कर समझता है—मैं बड़ी अच्छी तरह से हूँ। भगवान भी तब कहते हैं—तुम अच्छी तरह से ही रहो। फिर जब पेन्शन लेकर घर में बैठता है तब सोचता है—इस जीवन में मैं ने क्या किया ? भगवान भी तब कहते हैं—हां, ऐसा ही ; तुमने किया क्या ?

४—ब्रह्म और शक्ति अभेद है ; ब्रह्म जब सर्व कर्म रहित अवस्था में रहते हैं तब उनको ब्रह्म या शुद्ध ब्रह्म कहा जाता है। और जब सृष्टि स्थिति और प्रलय इत्यादि करते हैं तब उनकी शक्ति का कार्य कहलाता है।

५—साकार और निराकार यह दोनों किस प्रकार हैं? जैसे जल और बरफ। जब जल जम जाता है; तब बरफ़ कहलाता है और साकार हो जाता है; और जब गल कर जल हो जाता है तभी निराकार कहलाता है।

६—परमहंस जी एक दिन त्रैलंग स्वामी जी के दर्शन को गये। परमहंस देव जी ने पूछा—ईश्वर तो एक है; फिर लोग उन्हें बहुत करके क्यों बतलाते हैं? त्रैलंग स्वामी जी ने मौन व्रत होने के कारण, इशारे से समझाया कि भगवान का ध्यान करने से पता चलता है कि वे एक ही हैं—और विचार करते ही 'बहुत-पन' की बुद्धि आके घेर लेती है।

७—जो साकार हुये वे ही निराकार भी हैं। भक्त के निकट वे साकार रूप से प्रकट होकर दर्शन देते हैं। जैसे महा समुद्र है तो केवल अनन्त जल राशि,—हां कहीं कहीं पर अतिरिक्त ठण्ढक पड़ने के कारण उसका जल जम कर बरफ़ के

रूप में दिखलाई पड़ता है। उसी प्रकार भक्त के भक्ति रूपी ठण्ढक मे भगवान के साकार रूप का दर्शन-लाभ होता है। एवं सूर्य निकलने पर जैसे बरफ़ गल जाता है और पहले की तरह जल हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी सूर्य्य के उदय होने पर वही साकार रूप बरफ़ गल कर जल हो जाता है अर्थात् सब कुछ निराकार में बदल जाता है।

# माया

-•१•-

१—माया की प्रकृति कैसी है? जैसे पानी के ऊपर की काई। हटाने पर सब काई हट जाती है। फिर थोड़ी देर बाद ही काई अपने आप ही फैल जाती है। उसी प्रकार जब तक विचार कीजिये अथवा जब तक साधु सत्संग कीजिये, कोई विकार नहीं रहता। थोड़ी देर बाद ही विषय वासना चित को ढक लेती है।

२—सांप के मुँह में विष है; वह जब स्वयम् खाता है तब विष उस पर प्रभाव नहीं डालता। परंतु जब दूसरे को काटता है तब विष उस पर प्रभाव कर जाता है। उसी प्रकार भगवान् में माया तो सही है, पर उनको मुग्ध नहीं कर सकती है, लेकिन दूसरों को वशीभूत कर लेती है।

३—माया किसे कहते हैं? बाप, माँ, भाई, स्त्री, पुत्र, भाँजा, भतीजा- इन सब से जो मोह है

वही माया है। और दया का अर्थ है—सर्व भूत में हमारे हरि विराजमान हैं यह समझ कर सब से बराबर प्रेम करना।

४—जिसको भूत आजाता है वह यदि जान जाता है तो भूत भाग जाता है। माया मुग्ध जीव यदि एक बार ठीक से जान ले कि वह माया द्वारा ग्रसित है, तो माया उसे शीघ्र ही छोड़ जाती है।

५—जीवात्मा और परमात्मा के बीच में एक माया का परदा है। यह परदा न हटने से आपस की भेंट नहीं हो सकती। जैसे आगे राम जी बीच में जानकी जी और पीछे लक्ष्मण जी। यहाँ पर राम को परमात्मा मान लो और लक्ष्मण को जीवात्मा। बीच में जानकी जी माया रूपी परदा हैं। जब तक जानकी जी बीच में हैं तब तक लक्ष्मण जी रामचन्द्र जी को नहीं देख सकते हैं। यद्यपि जानकी जी थोड़ा हट जावें तो लक्ष्मण जी को राम जी के दर्शन हो जावें।

६—माया दो प्रकार की होती है-एक विद्या दूसरे अविद्या। और विद्या रूपी माया भी दो प्रकार की

होती है, १-विवेक २-वैराग्य। इसी विद्या रूपी माया का अवलम्बन कर जीव भगवान् की शरण आता है। अविद्या रूपी माया छः प्रकार की होती है- काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर। अविद्या रूपी माया 'मैं' और 'मेरा' के ज्ञान द्वारा मनुष्यों को बाँध रखती है। मगर विद्या रूपी माया के प्रकाश से जीव की अविद्या एक दम नष्ट हो जाती है।

७—जैसे जब तक पानी गंदा रहता है तब तक चंद्र या सूर्य की परछाहीं उसमें ठीक २ दिखलाई नहीं पड़ती; उसी प्रकार माया अर्थात् 'मैं' और 'मेरा' यह भाव जब तक न दूर हो जाय तब तक आत्मा साक्षात् ठीक नहीं हो सकता है।

८—जैसे सूर्य्य पृथ्वी को प्रकाशित बनाये रखता है। परन्तु बादल के छोटे २ से टुकड़े के सामने आते ही दिखलाई नहीं देता है, उसी प्रकार सर्व-व्यापी और प्रकाश स्वरूप सच्चिदानन्द को हम मामूली माया के परदे के कारण देख नहीं सकते हैं।

९--तालाब की काई हटाने पर भी अपने आप फैल जाती है, उसी तरह माया को एक बार हटाने पर

भी फिर से आ घेरती है। पर यदि काई को हटा कर बाँस का बेड़ा बाँध दिया जावे तो काई बाँस को पार करके दुबारा नहीं आ सकती है। उसी प्रकार माया को हटा कर सद्ज्ञान और भक्ति का बेड़ा लगाये रखने से माया अपने अन्दर नहीं घुस सकती है। ऐसी अवस्था में शुद्ध सच्चिदानन्द का ही तेज अंतरात्मा को प्रकाशित करता रहता है।

# अवतार

१—जब बड़े २ शहतीर पानी के ऊपर एक साथ उतराते हैं तो उनके ऊपर चढ़ कर कितने ही मनुष्य नदी को पार कर सकते हैं; उनके बोझ से वे डूबते नहीं हैं। पर छोटी सी एक लकड़ी के टुकड़े पर यदि कौआ भी बैठ जाय तो वह डूब जाती है। उसी प्रकार जब भगवान् के अवतारों का आविर्भाव होता है तो कितने ही हजारों लाखों मनुष्य उनके आश्रय से तर जाते हैं। परंतु सिद्ध पुरुष अपनी चेष्टा से बहुत ही कष्ट पाकर पार कर सकता है।

२—रेल का इञ्जिन स्वयं भी आगे बढ़ता है और कितनी ही माल गाड़ियों को अपने साथ खींच लेजाता है। अवतार भी उसी प्रकार हजारों लाखों मनुष्यों को ईश्वर के निकट पहुँचा देते हैं।

# जीव के अवस्था भेद

१—मनुष्य मानों तकिये के गिलाफ़ हैं। ऊपर से देखने पर कोई तो लाल है, कोई तो काला है, मगर सबके भीतर रुई ही है। मनुष्य देखने में कोई सुन्दर है, कोई काला है, कोई महत्मा है, तो कोई दुराचारी है; मगर सबके भीतर वही परमात्मा विराजमान है।

२—संसार में दो प्रकार के मनुष्यों के स्वभाव पाये जाते हैं। कुछ तो सूप की तरह स्वभाव रखते हैं और कुछ चलनी की तरह होते हैं। सूप जैसे भूसी इत्यादि असार वस्तुओं का त्याग करके सार युक्त वस्तुओं को ग्रहण करता है, जैसे अनाज इत्यादि। उसी प्रकार कुछ लोग संसार की असार वस्तुओं को (कामिनी, कञ्चन आदि) छोड़ कर सार युक्त बात अर्थात् भगवान् को ग्रहण करते हैं। और चलनी जैसे सार युक्त वस्तुओं को निकाल कर असार वस्तुओं को अपने अन्दर रखती है इसी प्रकार संसार के कुछ पुरुष सार युक्त वस्तु ईश्वर को त्याग करके कामिनी कञ्चनादि को ग्रहण करते हैं।

३—विषयी पुरुषों का मन गोबर के कीड़े की भाँति होता है। यह कीड़ा गोबर में ही रहना अधिक पसन्द करता है। यदि गोबर छोड़ कर उसे कुछ भी दिया जावे तो उसे पसन्द नहीं आता है। यदि बलात्कार उसे कुछ दिया भी जावे तो उसके पसंद नहीं आता है। यदि वह गोबर के स्थान में पद्म में रख दिया जावे तो छटपटाया करता है। विषयी पुरुषों का मन उसी प्रकार विषय वासना की बातों के सिवाय अन्य किसी प्रकार की बातों में नहीं लगता है। यदि ईश्वरीय कथा उसे बतलाई जावे तो वह उस स्थान को त्याग करके जहाँ विषय की बातें होती हैं वहाँ चला जाता है।

४—जाल में पड़ने पर भी कुछ मछलियाँ भागने की कुछ भी चेष्टा नहीं करतीं पर चुप चाप पड़ी रहती हैं और कुछ इधर उधर छटपटाती रहती हैं, मगर भाग नहीं पाती हैं। एक तीसरे प्रकार की मछली होती है जो जाल को काट कर भाग जाती है। इस प्रकार सांसारिक जीव भी तीन प्रकार के होते हैं; यथा—बद्धजीव, मुमुक्षु जीव और मुक्त जीव।

५—कबूतर के बच्चे का गला ऊपर से टटोलने पर जैसे मटर के दाने साफ़ मालूम पड़ते हैं, उसी तरह विषयी पुरुष से बात चीत करते ही विषय वासनायें स्पष्ट हो जाती हैं। विषय की बातें तो उनको भली मालूम होती हैं किन्तु धर्म की बातें अच्छी नहीं लगतीं।

६—यदि किसी ने मूली खाई हो तो उसकी डकार से पता चल जाता है; इसी प्रकार धार्मिक पुरुष से भेंट होने पर धर्म विषय की ही बातें हुआ करती हैं। और जो विषयी लोग हैं वे केवल विषय की ही बातें किया करते हैं।

७—दो प्रकार की मक्खियाँ होती हैं। एक तो शहद की मक्खी जो शहद के अतिरिक्त कुछ भी नहीं खाती हैं। और जो साधारण मक्खियाँ होती हैं वे शहद पर भी बैठती हैं, और यदि सड़ता हुआ घाव दिखलाई पड़े तो तुरन्त शहद को छोड़ कर उसी पर जा बैठती हैं। इसी प्रकार दो तरह के स्वभाव के लोग होते हैं, एक जो ईश्वर में अनुराग

करते हैं वे ईश्वर की चर्चा के सिवाय कोई दूसरी बात करते ही नहीं। दूसरे और जो संसार में आसक्त जीव हैं वे ईश्वर की बात सुनते २ यदि किसी स्थान पर विषय की बातें होती हों तो तुरन्त भगवान् की चर्चा को छोड़ कर उसी में संलग्न हो जाते हैं।

८—संसारी जीव स्वयं तो हरि नाम सुनते ही नहीं हैं, बल्कि दूसरों को भी नहीं सुनने देते हैं। धर्म और धार्मिक पुरुषों की निन्दा किया करते हैं। कोई यदि ईश्वरीय ध्यान में मग्न हो तो उसका हास्य करते हैं।

९—यदि मगर के ऊपर किसी शस्त्र द्वारा हमला किया जावे तो उसे घायल न करके शस्त्र छिटक कर अलग जा गिरता है। उसी प्रकार संसारी जीव में धर्म चर्चा जितनी ही क्यों न की जाय उनके हृदय पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता।

१०—सूर्य की किरणें सर्वत्र समान होने पर भी जल, दर्पण और स्वच्छ पदार्थों पर विशेष भाव से प्रकाशित होती हैं। भगवान् का विकाश प्रत्येक

जीव में समान होने पर भी महात्माओं के हृदयों में विशेष रूप से पड़ता है।

११—सभी प्रकार का पानी नारायण के रूप हैं। परन्तु हर स्थान का जल पीने के योग्य नहीं होता है। सब कहीं परमात्मा है पर हर स्थान पर जाना असम्भव है। जैसे किसी जल में पैर धोये जाते हैं। कोई पिया जाता है, और कोई जल स्पर्श तक नहीं किया जाता है। इसी प्रकार किसी स्थान पर जाना चाहिये और किसी स्थान को दूर ही से प्रणाम करके भागना चाहिये।

१२—शेर के अन्दर भी परमात्मा विराज मान है, मगर उसके सामने नहीं जाना चाहिये। दुष्ट मनुष्यों में भी ईश्वर मौजूद है मगर इस लिये उनका साथ करना उचित नहीं है।

१३—गुरू जी ने एक शिष्य को उपदेश दिया कि सभी मनुष्यों में जगदीश्वर का बास है। शिष्य ने भी ऐसा ही समझ लिया। एक दिन रास्ते में एक हाथी आ रहा था उसके महावत ने कहा "हट जावो"। शिष्य ने सोचा, "मैं क्यों हटूँ ?"

मैं भी नारायण, हाथी भी नारायण, डर किस बात का है। यह समझ कर वह वहाँ से न हटा। अंत में हाथी ने उसे सूँड से उठा कर दूर फेंक दिया। इससे उसको बड़ी चोट आई। इसके पश्चात् उसने गुरू जी से वृत्तान्त कह सुनाया। गुरू जी ने कहा :—"भली कही—तुम नारायण हो और हाथी भी नारायण है; मगर ऊपर से महावत रूपी नारायण की बात क्यों नहीं सुनी ?"

१४—साधु पुरुषों का उत्साह कैसा है, जानते हो ?—जैसे पानी पर की लकीर। जैसे पानी पर लकीर खींचने पर शीघ्र ही मिट जाती है, उसी प्रकार सन्त जनों को क्रोध आते ही ठण्ढा पड़ जाता है।

१५—जैसे कसौटी पर सोना या पीतल को घिसते ही उनके भेद का पता चल जाता है, उसी प्रकार भगवान के निकट सरलता या कपट का पता शीघ्र ही चल जाता है।

१६—बद्ध सांसारिक जीवों को किसी भी प्रयत्न से होश नहीं होता है। संसार के विविध दुःख, कष्ट और विपत्ति में पड़े रहने पर भी उनको चैतन्य

नहीं होता है । जैसे ऊँट काँट दार घास को खाना पसन्द करता है और खाते २ मुँह से खून की धारा बहती रहती है पर तो भी काँटे दार घास खाना नहीं छोड़ता है । उसी तरह सांसारिक पुरुष अधिक से अधिक शोक ताप सहन करने पर भी विषय वासना के लालच को नहीं छोड़ता ।

# गुरु

१—गुरु एक ही होता है ; परन्तु उपगुरु बहुत से हो सकते हैं। जिनसे कुछ भी शिक्षा प्राप्त हो, उन्हीं को उपगुरु कहा जा सकता है। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि अवधूत मुनि ने इस प्रकार २४ उपगुरु किये थे।

२—एक दिन मैदान पर चलते चलते अवधूत ने देखा कि सामने बड़ी शान के साथ बाजा गाजा बजाते हुए एक दूल्हा आरहा है और एक तरफ़ एक व्याध एकाग्र चित्त हो कर अपने लक्ष्य की ओर निशाना बाँधे बैठा है और बारात के सङ्ग जो गाना बजाना हो रहा था उसकी तरफ़ उसने एक बार भी नहीं देखा। अवधूत ने उस व्याध को नमस्कार करके कहा कि आप हमारे गुरु हैं। मैं भगवान् का ध्यान करने जब कभी बैठूँ तब उनकी ओर मेरा एकाग्र चित्त रहे।

३—एक मनुष्य मछली पकड़ रहा था। अवधूत ने उसके पास जाकर पूछा—"भाई, अमुक स्थान को जाने का कौन सा रास्ता है?" वह उस समय मछली पकड़ने में मस्त था। जब एक मछली काँटे में आ फँसी तभी उसने मुड़ करके कहा "आप क्या कहते हैं"। अवधूत जी ने प्रणाम करके कहा, "आप हमारे गुरु हैं, हम जब आप की तरह इष्ट देव के ध्यान में बैठें, तब इसी प्रकार अभिलाषा पूरी होने के पहले दूसरी ओर मेरा मन न जावे।"

४—एक चील की चोंच में एक मछली को दबाये हुए आते देख कर सैकड़ों कौए और चीलें उसके पीछे हो लिये और उसे ठुकरा २ कर मछली छीनने का प्रयत्न करने लगे। अन्त में विवश हो कर उसने मछली को फेंक दिया। एक दूसरी चील ने ज्योंही उसको उठाया, त्योंही कौए और चीलों के झुण्ड ने पहली चील को छोड़ कर उस दूसरी चील का पीछा किया। पहली चील निश्चिन्त होकर एक पेड़ की डाली पर चुप चाप बैठ गई।

अवधूत जी ने इस निरापद अवस्था को देख कर प्रणाम किया और बोले इस संसार के झंझटों को दूर करने से ही शान्ति मिल सकती है ; नहीं तो बड़ी विपत्तियों का सामना करना पड़ता है" ।

५—अवधूत जी ने शहद की मक्खी को भी गुरू करके माना है । शहद की मक्खी बहुत दिन तक लगातार कष्ट उठा कर शहद इकट्ठा करने लगी । कहीं से एक मनुष्य आया और उसके छत्ते को तोड़ कर उसका शहद चाट गया । बहुत दिनों में इकट्ठा किया हुआ शहद वह मक्खी स्वयं अपने कार्य में न ला सकी । अवधूत जी ने मक्खी को नमस्कार करके कहा—"हे मधुकर ! आप हमारे गुरू हैं ; सञ्चय करने का क्या परिणाम होता है, उसकी शिक्षा आप से ही मुझे मिली है ।"

६ -यदि किसी के हृदय में ठीक २ अनुराग पैदा हो और साधन भजन की आवश्यकता समझने लगे, तो निश्चय ही भगवान सद्गुरु से साधक को मिला देते हैं । साधक के लिये सद्गुरू की चिन्ता की आवश्यकता नहीं है ।

७—वैद्य तीन प्रकार के होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। जो वैद्य केवल नाड़ी देख कर "यह लो दवाई खा लेना" कह कर चले जाते हैं ऐसे वैद्य अधम श्रेणी के होते हैं। जो वैद्य बड़ी मीठी बातों द्वारा उसे समझाता है कि औषधि सेवन से भला ही होगा—ऐसे वैद्य मध्यम श्रेणी के होते हैं। और जो वैद्य रोगी को किसी प्रकार से भी औषधि सेवन करता नहीं देख कर, उसके सीने पर सवार होकर मुँह फाड़ के दवाई खिलाता है—ऐसा वैद्य उत्तम श्रेणी का होता है। इसी प्रकार जो गुरू या आचार्य धर्म शिक्षा देकर शिष्य की कोई भी खबर नहीं रखते हैं, वे गुरू अधम हैं। जो शिष्य के मङ्गल के निमित्त बारम्बार प्यार से समझाते रहते हैं, जिससे शिष्य उनके उपदेश धारण करे ऐसे गुरू मध्यम प्रकार के होते हैं। और जो गुरू यह देख कर कि शिष्य ठीक २ उनके उपदेशों का पालन नहीं करता है उसके ऊपर जबरदस्ती तक करते हैं, उनकी गणना उत्तम गुरुओं में होती है।

# धर्म अनुभव की वस्तु है
## (पाठ व विचार की नहीं)

१—शास्त्र विचार कब तक आवश्यक है, जानते हो? जब तक सच्चिदानन्द भगवान् से साक्षात् न हो। जैसे भौंरा जब तक फूल पर नहीं बैठता तभी तक गुञ्जार किया करता है; और जब फूल के ऊपर बैठ कर मधु पान करता रहता है तब तक एक दम चुप होकर रहता है और किसी प्रकार का शब्द नहीं करता है।

२—स्वर्गीय महात्मा केशवचन्द्र सेन ने परमहंस देव जी से पूँछा, "बहुत से पण्डित लोग नाना शास्त्रों का पाठ करते हैं, पर उनको ज्ञान लाभ क्यों नहीं होता है?"। परमहंस जी ने उत्तर दिया, "जैसे चील गिद्ध बहुत ऊँचे पर उड़ते तो हैं, मगर उनकी दृष्टि पृथ्वी पर ही रहती है, उसी प्रकार अनेक शास्त्रों का पाठ करने से ही क्या

होगा ? उनका मन तो सदैव कामिनी कञ्चन में आसक्त रहने के कारण ज्ञान लाभ नहीं कर पाता है।

३—परम हंस जी का कथन है,—ग्रन्थ तो ग्रन्थ का काम न करके ग्रन्थि (गाँठ) का ही काम करते हैं। विवेक और वैराग्य के साथ बिना ग्रन्थादि का पाठ करने से अहंकार की ही गाँठ हृदय में बढ़ा करती है।

४—जैसे खाली गडुए में पानी भरते समय भक २ शब्द होता है। मगर भर जाने पर किसी प्रकार का शब्द नहीं होता है। उसी प्रकार जिसको भगवान प्राप्त नहीं हुए हैं वे ही भगवान के सम्बन्ध में नाना प्रकार के तर्क वितर्क किया करते हैं, और जो भगवत् दर्शन लाभ कर लेते हैं स्थिर होकर अस्तित्व का सुख भोग करते हैं।

५—विवेक और वैराग्य के बिना शास्त्र पढ़ना व्यर्थ है। विवेक वैराग्य के बिना धर्म लाभ भी नहीं होता है। सत् और असत् का विचार करके सद्वस्तु ग्रहण करना और देह पृथक है और

आत्मा भी पृथक है—ऐसे विचार बुद्धि का नाम विवेक है, विषय में तृष्णा का नाम वैराग्य है।

६—पत्रों में लिखा है कि यथेष्ट वर्षा होगी, परन्तु समूचे पत्रे को निचोड़ने पर भी एक बूंद जल भी नहीं मिल सकता। वैसे ही पोथियों में अनेक धर्म विषयक बातें लिखी हैं पर केवल पढ़ने से ही कोई लाभ नहीं हो सकता है—साधना की आवश्यकता है।

७—एक बाग में दो आदमी घूमने गये। उनमें जिसकी सांसारिक बुद्धि प्रबल थी वह विचार करने लगा कि उस बाग में कितने आम के पेड़ हैं और उनमें कितने आम लगे हैं अथवा बाग का मूल्य क्या हो सकता है इत्यादि। और दूसरे आदमी बाग के मालिक के साथ दोस्ती कर पेड़ के नीचे बैठ कर एक २ करके आम तोड़ता गया और खाता गया। कहो इनमें कौन विशेष बुद्धिमान् है? आम खाओ पेट भरेगा, केवल आम गिनने में और पत्तों का हिसाब किताब करने में क्या रक्खा है? जो

लोग ज्ञान का अपमान करते हैं शास्त्र, मीमांसा व तर्क युक्ति में ही फँसे रहते हैं आम गिनने वाले के समान हैं। बुद्धिमान भक्तजन भगवान की कृपा से इस संसार में परम सुख प्राप्त करते और वे आम खाने वाले के समान सुखी हैं।

८—जहाँ हाट लगा हो वहाँ से दूर खड़े होकर केवल हूँ हूँ का शब्द सुनाई देता है। जब तक भीतर न प्रवेश किया जाय तब तक हूँ हूँ शब्द का स्पष्ट रूप ठीक समझ नहीं आता। भीतर प्रवेश करने पर पता चलता है कि कोई सौदा कर रहा है और कोई पैसे देकर वस्तुएँ ख़रीद रहा है। ऐसे ही धर्म जगत के बाहर रह कर धर्म भाव का स्पष्ट रूप कुछ भी समझ में नहीं आसकता है।

९—इस संसार में सब वस्तुएँ जूठी हो चुकी हैं। केवल एक ब्रह्म वस्तु ही जूठी नहीं हो सकी है। वेद पुराण इत्यादि सब मनुष्य के मुख से उच्चारण होने के कारण जूठी हो चुकी हैं। किन्तु अब तक ब्रह्म क्या वस्तु है कोई भी मुख से वर्णन नहीं कर पाया है।

१०--जैसे बालक को स्त्री रमण सुख नहीं समझाया जा सकता है; उसी प्रकार विषय आसक्त मायायुक्त संसारी जीव को ब्रह्मानन्द नहीं समझाया जा सकता है।

११--ढोलक या तबले के वाद्य सर्गम रूप में उच्चारण करना सहज है; किन्तु उसे बजाना कठिन है। ऐसे ही धर्म की बातें कहना सहज है किन्तु कार्य में परिणत करना कठिन है।

१२--रामचन्द्र नाम का एक ब्रह्मचारी परमहंस जी के दर्शन करने आया। वह बैठ गया। और कोई बात चीत न कर केवल शिवोऽहम् कर के रटने लगा। कुछ देर चुप रहने के बाद परमहंस जी ने कहा, "केवल शिवोऽहम् करने से क्या होगा? जब उसी सच्चिदानन्द शिव जी को हृदय में ध्यान करने से तन्मयता प्राप्त हो जाय तभी शिवोऽहम् शब्द कहना उचित है। नहीं तो केवल मुख से शिवोऽहम् कहने से क्या होगा? जब तक ऐसी अवस्था न हो जाय तब तक सेव्य-सेवक भाव ही अच्छा होता है" परमहंस देव जी के ऐसे नाना उपदेश द्वारा ब्रह्मचारी जी को चैतन्य हो गया और वह अपनी भूल समझ सका।

# संसार और साधन

१—लुकी लुकौअल (एक खेल) खेलते वक्त ढाई को छू लेने से चोर नहीं माना जाता है, वैसे ही भगवान के पाद पद्म छू लेने से फिर संसार में नहीं फँस सक्ता है। संसार में जिन्होंने ईश्वर का आश्रय लिया है, उन्हें किसी विषय में फँसना नहीं पड़ता है।

२—संसार में 'रह कर जो साधना कर सकते हैं, वे ही वीर साधक के नाम से पुकारे जा सकते हैं। शक्तिवान् पुरुष जैसे सिर पर भारी बोझा लादे रहने पर भी दूसरी ओर गर्दन मोड़ कर देख सकता है, वैसे ही वीर साधक इस संसार के बोझे को लादे रहने पर भी भगवान् की ओर देख सकता है।

३—गाँव की औरतें सिर पर चार पाँच घड़े रख कर ले जा सकती हैं। रास्ते में अपनी जान पहचान के लोगों से तनिक देर खड़ी हो कर बातें भी करती जाती हैं, पर उनका ध्यान हर समय

उन्हीं घड़ों की ओर रहता है, जिससे कि वह गिर न पड़ें। धार्मिक पुरुषों को भी इसी प्रकार धर्म पथ पर नज़र रखना उचित है जिससे कि वे रास्ता भूल न जाएँ।

४—कुलटा स्त्री जैसे अपने लोगों में रहते हुए भी गृहस्थी के सभी काम करती रहती है, पर उसका मन उपपति की ओर ही लगा रहता है। वह काम धन्धा करते हुए सर्वदा सोचती है कि कब उपपति के साथ भेंट होगी ? ऐसे ही तुम भी संसार के सब काम धन्धों को करते हुए भी अपने मन को प्रति क्षण भगवान् की ओर रक्खो।

५—तराज़ू के जिधर का पल्ला भारी होता है, उधर ही झुक जाता है और जिधर का हल्का होता है उधर का ऊपर उठ जाता है। मनुष्य का मन भी तराज़ू की भाँति है। उसके एक तरफ़ संसार है, दूसरी तरफ़ भगवान है। जिसके मन में संसार, मान इत्यादि का भार अधिक होता है उसका मन भगवान् की तरफ़ से उठ कर संसार की ओर झुक जाता है। और जिसके मन में वैराग्य और विवेक

अथवा भगवद्भक्ति का भार अधिक होता है उसका मन संसार की ओर से उठकर भगवान की ओर झुक जाता है।

६—एक किसान सारे दिन गन्ने के खेत में पानी सींचने के बाद खेत में गया तो उसने देखा कि एक बूँद पानी भी खेत में नहीं पहुँचा है। उस खेत में कई बिल थे। उनमें से हो कर तमाम पानी दूसरी ओर बह गया। इसी प्रकार जो साधक विषय वासना और संसार के मानापमान की ओर ध्यान देते हुए साधन करते हैं, वे सारे जीवन-मार्ग में ईश्वर की उपासना करने पर भी अन्त में यही देखते हैं कि उन वासना रूपी बिलों के द्वारा उनकी सम्पूर्ण चेष्टायें व्यर्थ हो गईं।

७—संसार में सुख के लोभ से बहुत से लोग धर्म कर्म किया करते है। परन्तु तनिक दुःख पाते ही या मरने के समय वे सब भूल जाते हैं। जैसे तोता सारे दिन राधा कृष्ण २ रटता है; मगर ज्योंही बिल्ली आकर पकड़ती है त्योंही तुरन्त ही राधाकृष्ण नाम छोड़ कर कें कें करने लगता है।

८—पानी में नाव रहने से कोई हानि नहीं है, परन्तु नाव में पानी पहुँच जाय तो नाव डूब जायेगी। साधक के संसार में रहने से कोई नुक़सान नहीं है, परन्तु साधक के मन में संसार-भाव घुसने का फल अनर्थ ही होता है।

९—साँप को पकड़ने जाओ तो फ़ौरन काट खाएगा, मगर कोई मनुष्य यदि मंत्र जानता हो तो कई साँपों को अपने गले में लपेट कर ख़ूब तमाशा दिखा सकता है। वैसे ही वैराग्य और विवेक का मंत्र सीख कर यदि कोई संसार में लिप्त भी रहे तो भी संसार की माया में फँस नहीं सकता है। मन ही सब कुछ जानेगा। ज्ञान अज्ञान सब मन की अवस्थायें हैं। मनुष्य मन ही में बद्ध और मन ही में मुक्त, मन ही में साधु और मन ही में असाधु और मन ही में पापी और मन ही में पुण्यवान् हो सकता है। संसारी जीव यदि अपने मन में सर्वदा भगवान का स्मरण करता रहे तो उसके लिये किसी प्रकार की साधना की आवश्यकता नहीं है।

१०—मनुष्य को ज्ञान लाभ होने पर वह किस प्रकार रहता है, जानते हो ? जैसे काँच के बने हुए कमरे के बाहर और भीतर दोनों तरफ़ उसमें बैठा हुआ पुरुष देख सकता है ।

११—गीता पढ़ने से जो फल प्राप्त होता है, वही गीता को बार २ उच्चारण करने से स्पष्ट हो जाता है, यथा "गी तागी तागी तागी तागी" । गीता का तात्पर्य त्यागी बनाना ही है ।

# साधन का अधिकारी

१--जैसे आम अमरूद इत्यादि समूचे फल ठाकुर जी के भोग में लगा सकते हैं। मगर कौए के द्वारा ठुकराया हुआ दागी फल न तो देव पूजा में ही आसकता है और न तो ब्राह्मण अपने कार्य में ला सकता है। उसी प्रकार पवित्र हृदय बालकों को या युवा पुरुषों को ही धर्म पथ में लाने की चेष्टा करना उचित है, वरना जिस पुरुष के हृदय में एक बार भी विषय-बुद्धि प्रवेश कर गई है, उसका धर्म पथ पर चलना बड़ा ही कठिन कार्य हो जाता है।

२—हम छोटे बच्चों को इतना क्यों प्यार करते हैं, जानते हो? बाल्यावस्था में उनका मन सोलहों-आना अपने बस में रहता है। फिर धीरे २ कई भागों में विभाजित हो जाता है। विवाह होने पर आठ आना स्त्री के पास चला जाता है। सन्तान होने पर ४ आना बच्चों की ओर बट जाता है, और

चार आना, माता पिता, मान सन्मान और सज धज की ओर रहता है। इसी लिये जो लोग छोटी अवस्था में ईश्वर लाभ की चेष्टा करते हैं वे सहज ही में सफलीभूत हो जाते हैं। बूढ़ों के लिये सफलता होना बड़ी ही कठिन समस्या हो जाती है।

३—जैसे तोते के गले में कण्ठी निकलने पर फिर और नहीं पढ़ाया जा सकता है। केवल जब तक वह बच्चा रहता है, तभी तक कुछ भी पढ़ना सीख सकता है। इसी प्रकार बूढ़े का मन सहज में ईश्वर की ओर नहीं जाता है, पर बाल्यावस्था में थोड़ी ही चेष्टा में मन स्थिर हो सकता है।

४—एक सेर दूध में केवल एक छटाँक पानी मिला हो तो सहज ही में थोड़ी आँच में खोया बनाया जा सकता है, परन्तु एक सेर में यदि तीन पाव पानी हो तो आसानी से खोया नहीं बन सकता है, बहुत लकड़ी और आँच की आवश्यकता होती है। इस लिये बालक के मन में विषय बासना कम होने के सबब से उसका मन ईश्वर की ओर सरलता-पूर्वक ही ढल जाता है। मगर बूढ़ों के मन में

विषय वासना खूब ठूँस २ कर होने के कारण उसका मन ईश्वर की ओर नहीं जा सकता है।

५—जैसे कच्चा बाँस आसानी से झुकाया जा सकता है और पक्का बाँस झुकाये जाने पर टूट जाता है वैसे ही बच्चों का मन आसानी से ईश्वर की तरफ़ झुकाया जासकता है। मगर बूढ़े मन को उस ओर झुकाने का प्रयत्न किया जाय तो वे उस सत्सङ्ग को त्याग देते हैं।

६—मनुष्य का मन मानों सरसों की पोटली है। पोटली की सरसों यदि एक बार भी बिखर जाय तो इकट्ठा करना मुश्किल हो जाता है। वैसे ही मनुष्य का मन सम्भालना बड़ा ही कठिन कार्य हो जाता है। बालक का मन बिखरा न होने के कारण बहुत ही जल्द स्थिर हो जाता है; मगर बूढ़ों का मन, सोलह आना संसार में बटे रहने की वजह से संसार से हटा कर ईश्वर में स्थिर करना बड़ा ही कठिन कार्य हो जाता है।

७—सूरज निकलने से पहले यदि दही को मथा जाय तो बढ़िया मक्खन निकलता है दिन चढ़

जाने पर वैसा मक्खन नहीं निकलता है; ऐसे ही बाल्यावस्था में जो ईश्वर से अनुराग रखते हैं और साधन सिद्ध में लगे रहते हैं उनको ईश्वर अवश्य प्राप्त होता है।

८—वासना शून्य मन कैसा है, जानते हो? जैसे सूखी दियासलाई। एक बार घिसने से ही फौरन जल जाती है और गीली होने पर घिसते २ टूट जाती है। मगर जलती नहीं। इसी प्रकार सरल सत्यनिष्ठ, और निर्मल स्वभाव वालों को एक बार उपदेश देने पर ही उनका मन ईश्वर के अनुराग में हो जाता है। विषय आसक्त पुरुषों पर हमारे उपदेशों का कोई फल नहीं होता है।

# साधन पथ में विघ्न

१—जैसे घड़े में एक भी छेद के रहने से सब पानी धीरे २ बह जाता है। उसी प्रकार साधक के अन्दर तनिक भी संसार की कमज़ोरी रह जाय तो सब साधना व्यर्थ हो जाती है।

२—गीली मिट्टी में कोई भी चीज़ बनाई जा सकती है। मगर जली हुई मिट्टी गढ़ने के काम में नहीं आ सकती है। जिसका हृदय विषय बुद्धि की ज्वाला से जल गया है, उसमें पारमार्थिक भाव नहीं हो सकता है।

३—चीनी (शकर) और बालू एक साथ रहने पर भी जैसे चींटी बालू को छोड़ कर शक्कर खा लेती है; वैसे ही सन्त लोग इस संसार में सद्वस्तु को जो सच्चिदानन्द है उसको ग्रहण करते हैं और असद् जैसे कामिनी, कञ्चन को त्याग देते हैं।

का लड़का, किसी का दामाद और श्वसुर इत्यादि होता है। ऐसी स्थिति एक ही व्यक्ति होने पर भी सम्बन्ध के भेद से उनमें भिन्न २ प्रकार का अन्तर उपस्थित हो जाता है। उसी प्रकार उस सच्चिदानन्द की भक्त जन शान्त, दास्य, वात्सल्य और मधुर आदि भावों से नाना विचारों द्वारा उपासना करते हैं।

३—जिसकी जैसी भावना होती है, उसको वैसा ही फल भी होता है अर्थात् जो भगवान् को चाहते हैं, वे उन्हें प्राप्त भी होते हैं और जो उनके ऐश्वर्य की कामना करते हैं, वे केवल ऐश्वर्य को ही पाते हैं।

४—राजा के महल में पहुँच कर जो भीख माँगने की अभिलाषा से जाता है और वहाँ पहुँच कर आटा चावल इत्यादि साधारण वस्तुओं की प्रार्थना करता है, वह निहायत मूर्ख है। राजाधिराज भगवान् के दरवाजे पहुँच कर ज्ञान भक्ति आदि रत्नों की प्रार्थना करने के स्थान पर जो अष्ट सिद्धि आदि किसी सांसारिक तुच्छ कामना की प्रार्थना करता है, वह निहायत बेवक़ूफ़ है।

५—भक्त या ज्ञानी के भाव बाहर से समझना बड़ा ही कठिन कार्य है:—जैसे हाथी के दो प्रकार के दाँत होते है। बाहरी दाँत सिर्फ दिखलाने के होते हैं। उनसे खाया नहीं जा सकता है और एक प्रकार के दांत मुह के अन्दर होते हैं। उसके द्वारा खाया जा सकता है। वैसे ही साधक जन अपना भाव गुप्त रखते हैं।

६—योगी दो प्रकार के होते हैं गुप्त योगी और व्यक्त योगी। जो गुप्त योगी हैं वे गुप्त भाव से ईश्वर भजन में संलग्न रहते हैं। बाहरी लोगों को तनिक भी पता नहीं लगने पाता है। और जो व्यक्त योगी हैं वे बाहरी योग दण्ड धारण करके लोगों के सङ्ग योग की उमङ्ग में ही बात चीत किया करते हैं।

# उत्तम भक्त

१—पत्थर हज़ारों वर्ष यदि पानी में पड़ा रहे तो भी पानी उसके अन्दर कभी नहीं घुसता है; पर मिट्टी का ढेला पानी लगते ही गल जाता है। जो विश्वासी भक्त हैं, वे हज़ारों विपत्तियों में पड़ने पर भी हताश नहीं होते; पर अविश्वासी मनुष्य का हृदय छोटे (सामान्य) कारण से ही टल जाता है।

२—प्रहलाद की स्तुति से सन्तुष्ट हो कर भगवान् ने पूछा, "तुम क्या वर चाहते हो?" प्रह्लाद ने कहा, "हे भगवन्! जिन्होंने मुझे कड़ी २ तकलीफ़ें दी हैं, उन्हें आप क्षमा कीजिये। उनको दण्ड देने पर आप ही को कष्ट सहन करना पड़ेगा। कारण यह है कि आप ही तो सर्व भूतों में विद्यमान् है।"

३—भक्त केशव चन्द्र का ब्राह्म समाज में यह सुन कर परमहंस देव जी को उनसे भेंट करने की

बड़ी इच्छा हुई। एक तालाब के किनारे भेंट होते ही परमहंस देव जी बोल उठे "इन्हीं की दुम झड़ हो गई है।" यह सुन कर ब्राह्म समाजी भक्त हँस पड़े। केशव चन्द्र जी ने उनसे कहा, "आप लोग हँसिये नहीं। यह महात्मा जो कुछ कहते हैं, उसका अवश्य ही कोई गूढ़ तत्व है।" तब परमहंस देव जी ने कहा, "मेंढक के बच्चे के जब तक दुम रहती है, तब तक वह पानी में ही रहता है। दुम झड़ जाने पर पानी और स्थल दोनों ही स्थानों में रह सकता है। उसी प्रकार से जब भगवान् के चिन्तन से जब अविद्या दूर हो जाती है, तब भक्त भगवान् में डूबा रह सकता है और साथ ही साथ संसार में भी विचरण कर सकता है।"

# भिन्न २ प्रकार के साधक

१—संसार में दो प्रकार के साधक दिखलाई देते हैं। जैसे बन्दर का बच्चा और बिल्ली का बच्चा। बन्दर का बच्चा पहले अपनी माँ को पकड़ता है। फिर माँ उसको संग लेकर जहाँ तहाँ घूमती है। बिल्ली का बच्चा केवल एक ही स्थान में स्थिर रह कर म्याऊँ २ करता रहता है। फिर उसकी माँ उसकी गर्दन पकड़ कर इधर उधर ले जाती है। उसी प्रकार ज्ञानी या कर्मी साधक अपनी चेष्टा द्वारा ईश्वर के नाम का प्रयत्न किया करते हैं। और भक्त साधक ईश्वर को ही अपना कर्त्ता धर्त्ता समझ कर उन्हीं के चरणों में भरोसा करते हुए बिल्ली के बच्चे की भाँति निश्चिन्त हो कर राम नाम जपा करते हैं।

२—एक ही व्यक्ति जैसे किसी का बाप, किसी का ताऊ, किसी का चाचा, किसी का मौसा, किसी

४—कागज में यदि तेल लगा हो तो उस पर लिखा नहीं जा सकता है। वैसे ही जीव में जब कामिनी कञ्चन रूपी तेल लग जाता है तो त्याग रूपी खड़िये से घिसने पर ही साधन किया जा सकता है।

५—जो लोग स्वयम् तो कभी धर्म की चर्चा करते ही नहीं वरन दूसरों को ध्यान पूजा करते देख कर हँसी दिल्लगी उडाते हैं और धर्म और धार्मिक पुरुषों की निन्दा करते हैं। ऐसे पुरुषों का सङ्ग करना साधक के लिये सर्वथा अनुचित है। उनसे एक दम दूर रहना चाहिये।

६—गौओं के झुण्ड में अगर कोई दूसरा जानवर घुस जाय तो सब गौएँ मिल कर उस जानवर को सींग से मार २ कर भगा देती हैं। यदि कोई गाय आ जावे तो आपस में बदन चाटने लगती हैं। वैसे ही जब तक भक्त जनों में भेंट होती है तो वे आपस में धर्म की बातें किया करते हैं और परम सुख अनुभव करते हैं; पर वह सङ्गति एकाएक छूट जाने पर बड़ा दुःख होता है।

परन्तु कोई जातीय पुरुष आजाने पर उससे उसका संग करने में आनन्द नहीं मिलता है।

७--जो तालाब छिछला है, उसका पानी पीना हो तो ऊपर से धीरे २ ले लेना चाहिये। ज्यादा खलबलाने से नीचे का मैला ऊपर उठ कर सारे पानी को गन्दा कर देता है। ऐसे ही यदि सच्चिदानन्द लाभ करना चाहते हो तो गुरू के उपदेश में विश्वास करके धीरे २ साधन करो। व्यर्थ में केवल शास्त्र विचार अथवा तर्क वितर्क से यह छिछला मन गन्दा हो जायेगा।

८--मन और मुख (अर्थात् भीतर और बाहर) दोनों के एक करने का नाम ही साधन है। नहीं तो मुँह से तो कहते हैं, "हे भगवन्! तुम्हीं हमारे सर्वस्व हो" एवम् मन में विषय को ही सर्व मान कर बैठे हैं।

Printed at
The Mahendra Press,
Latouche Road, Lucknow.